जिंदगी की
लंबाई नहीं
बल्कि गहराई
मायने रखती है।
– अज्ञात

बहुतों के लिए ये संजीवनी

ज्यादा बड़ा सवाल यह है कि किन–किन सेक्टरों में कितनी कंपनियां खड़ी रह पाएंगी, कितनी दुकानें खुली रह सकेंगी और अंततः कितने लोगों का रोजगार बचाए रखना संभव होगा। इस दृष्टि से सीमित ही सही, पर पहली दोनों घोषणाएं उपयोगी हो सकती हैं।

राधा जोशी।

कोरोना और लॉकडाउन से पैदा हुई असामान्य स्थितियों ने पहले से ही लड़खड़ा रही भारतीय अर्थव्यवस्था का बुरा हाल कर दिया है। इसकी झलक बीते सप्ताह रिजर्व बैंक गवर्नर शक्तिकांत दास की घोषणाओं में भी देखी जा सकती है। लगातार नीचे आ रही रेपो रेट को एक बार फिर घटाकर उन्होंने चार फीसदी पर ला दिया जो साल 2000 के बाद से इसका सबसे निचला स्तर है। रेपो रेट वह दर होती है जिस पर बैंकों को रिजर्व बैंक से कर्ज मिलता है।

आरबीआई गवर्नर ने बैंकों से लिए गए कर्जों की किस्त चुकाने पर मिली छूट की अवधि तीन महीने और बढ़ाकर अगस्त तक कर दी। अर्थव्यवस्था के सामने मौजूद चुनौतियों की गंभीरता का संकेत करते हुए उन्होंने यह भी साफ कर दिया कि इस साल जीडीपी बढ़ोतरी के आंकड़े नेगेटिव रह सकते हैं। यह साफगोई इस लिहाज से अच्छी है कि जब देश एक आपदा से गुजर रहा हो तब देशवासियों को किसी गफलत में नहीं रहना चाहिए। मगर सचाई यह भी है कि एक सीमा के बाद न सिर्फ देशवासियों के लिए बल्कि सरकार के लिए भी जीडीपी के आंकड़ों का खास मतलब नहीं रह जाता।

ज्यादा बड़ा सवाल यह है कि किन–किन सेक्टरों में कितनी कंपनियां खड़ी रह पाएंगी, कितनी दुकानें खुली रह सकेंगी और अंततः कितने लोगों का रोजगार बचाए रखना संभव होगा। इस दृष्टि से सीमित ही सही, पर पहली दोनों घोषणाएं उपयोगी हो सकती हैं। रेपो रेट में कटौती से बाजार में लिक्विडिटी बनी रहेगी तो कम से कम कैश की कमी कोई मुद्दा नहीं बनेगी। रहा सवाल सस्ते कर्ज से इकॉनमी में हरकत लाने का तो जब बाजार में मांग ही नदारद है तो कंपनियां कर्ज लेकर अपना उत्पादन आखिर किसके लिए बढ़ाएंगी?

कर्ज की किस्त चुकाने पर कुछ और महीनों की छूट ज्यादा राहत देने वाली इसलिए नहीं लगती क्योंकि कर्जा तो ज्यों का त्यों वापस करना ही है। इधर की छूटी हुई सारी किस्तें जमा होती जाएंगी और राहत का दौर खत्म होने के बाद इस अवधि का भी सूद जोड़कर वसूल की जाएंगी। ऐसे में एक आशंका यह भी बनती है कि अदायगी शुरू होते ही बैंकों को अचानक डिफॉल्टरों की संख्या में भारी इजाफा न झेलना पड़े। बहरहाल, तमाम खतरों के बावजूद ये छूटें अनुपयोगी या अनावश्यक नहीं हैं। जो कारोबारी इन रियायतों का ढंग से इस्तेमाल करते हुए अपने कर्मचारियों और ग्राहकों से भरोसे का रिश्ता जोड़े रहेंगे, उनमें से बहुतों के लिए ये संजीवनी का काम कर सकती हैं।

बिजनेस सेंस आखिर बदलती स्थितियों से जुड़ी जरूरतों को समय रहते भांपने और उसी के अनुरूप अपने रंग–रूप और तेवर बदलने का ही दूसरा नाम है। बड़ी से बड़ी त्रासदी, बड़ा से बड़ा संकट, खतरनाक से खतरनाक महामारी भी इंसानी जिजीविषा के इस पहलू को मात नहीं दे सकती। लॉकडाउन आंशिक रूप से खुलने के साथ ही भारतीय बाजारों में हलचल शुरू हो गई है। उम्मीद है कि अगले एक–दो महीनों में ही इनकी जगमगाहट फिर पहले जैसी हो जाएगी।

जीवन पर ध्यान

धर्म-दर्शन

अशोक वोहरा। अगर आप महान लोगों के जीवन पर ध्यान देंगे तो उन्होंने स्वयं अपने जीवन की दिशा तय की थी। हो सकता है वे अपनी कला, अपने शौक, अपने अध्ययन या फिर आध्यात्मिक विकास की गति को जारी रखना चाहते हों। अगर हम अपनी आत्मा को सशक्त करते हुए अपने आध्यात्मिक पक्ष की ओर समय समर्पित करेंगे तब हम यह अनुभव कर पाएंगे कि जीवन के अन्य पहलू कितनी आसानी से विकसित होते जा रहे हैं। यह सब बिल्कुल वैसा ही है जैसे हम अपने बैंक अकाउंट में पैसे जमा करवाते हैं और उस पर ब्याज लगता है, यह ब्याज हमें आगे के खर्चों के लिए काम आता है। हर दिन कुछ समय के लिए ध्यान करने से हम यह बात समझ जाएंगे कि हम अपने समय का प्रयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए कर रहे हैं।

संपादकीय

स्कूल–अस्पताल पर जोर

जनहित केंद्रित स्वास्थ्य नीतियों के कारण बड़े फैसले लेना भी आसान रहा। दिल्ली के क्वारंटीन केंद्र और कोरोना वार्ड उत्कृष्टता का उदाहरण हैं। कोरोना वॉरियर्स के अच्छे होटलों में रहने की व्यवस्था, उनके कोरोना संक्रमित होने पर उच्चस्तरीय इलाज और दुर्भाग्यवश मृत्यु पर परिजनों के लिए एक करोड़ की सम्मान राशि को दिल्ली के विशेष प्रयासों के बतौर देखा जाएगा। हम आम आदमी की जिंदगी में बदलाव के लिए राजनीति में आए हैं। कोशिश रहती है कि यह बदलाव हमारे हर कदम में दिखे। पाश की कविता 'हमारे समयों में' की पहली पंक्ति से बात शुरू की थी, उसी की अंतिम पंक्ति से बात खत्म करना चाहूंगा– 'यह गौरव हमारे ही समयों का होना है!'

इतना ही नहीं, तीसरे चरण के लॉकडाउन के दौरान सबसे पहले अरविंद केजरीवाल ने ही साफ शब्दों में कहा कि 'अब हमें कोरोना के साथ जीने की आदत डालनी पड़ेगी। हमें कोरोना से लड़ते हुए जीना है। हम लंबे समय तक सब कुछ बंद करके नहीं रह सकते।' हमें खुशी है कि इस बात को सबने माना और आज हम कोरोना से लड़ाई के एक नए दौर में प्रवेश कर चुके हैं। मार्च से अब तक का वक्त काफी चुनौतियों भरा रहा है। जिन स्कूल भवनों को उत्कृष्टता का केंद्र बनाने का सपना लेकर चल रहे थे, उन्हें अचानक राहत शिविरों में बदलना पड़ा। ढाई हजार से ज्यादा सरकारी स्कूलों में रोजाना लगभग दस लाख लोगों को भोजन कराया जा रहा है। लगभग 2.71 लाख प्रवासी मजदूरों को उनके घर भेजने का पूरा इंतजाम किया गया। स्कूल–अस्पताल को प्राथमिकता देने के कारण इस कोरोना संकट में दिल्ली का हेल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर काफी कारगर साबित हुआ।

कई प्रवासी मजदूरों से आत्मीय बातचीत के जरिए समझना चाहा कि आखिर उनमें घर लौटने की उतावली क्यों है। बंद रास्तों ने उन्हें ज्यादा भयभीत किया है। घर–परिवार, परिजनों की चिंता अलग है।

'देस' लौटना है

मनीष सिसोदिया।।

'यह सब कुछ हमारे ही समयों में होना था?' पाश की पंक्तियां उस वक्त मेरे दिमाग में घूम रही थीं, जब कल मैं एक सरकारी स्कूल में एक बच्ची से बात कर रहा था। इस उम्र में भी स्कूल आना मेरा सबसे प्रिय काम है। यही सपना लेकर हम राजनीति में आए थे कि शिक्षा कैसे बदले, शिक्षा के जरिए समाज कैसे बदले। इन दिनों स्कूल भवनों का उपयोग जरूरतमंद लोगों के शेल्टर और भोजन के लिए हो रहा है। प्रवासी मजदूरों की पीड़ा समझने और उनके पंजीकरण की प्रक्रिया देखने एक स्कूल गया था। वहां उस बच्ची से बात हुई। उसी स्कूल की छात्रा है लेकिन अभी लॉकडाउन के कारण अपने गांव लौटने को मजबूर है। उसकी पढ़ाई का क्या होगा, इस बात ने मुझे गहरी चिंता में डाल दिया। ऐसे बच्चों की शिक्षा बाधित होना कोरोना काल का ऐसा नुकसान है, जिसका आकलन शायद कोई नहीं कर सकेगा।

कोराना काल के नुकसान को हमें जान–माल की क्षति के अलावा अवसरों से वंचित होने, मनोबल टूटने और भावनात्मक क्षति के तौर पर भी देखना होगा। कई प्रवासी मजदूरों से आत्मीय बातचीत के जरिए समझना चाहा कि आखिर उनमें घर लौटने की उतावली क्यों है। जिनके

पास रहने–खाने का वैसा संकट नहीं, ऐसे लोग भी फिलहाल एक बार तो अपने 'देस' लौटना चाहते हैं। दिल्ली–मुंबई–बेंगलुरु उनके लिए 'परदेस' है। लंबे लॉकडाउन और कोरोना संक्रमण के भय ने उन्हें गहरे असुरक्षा बोध से ग्रसित कर दिया है। रेल–बस यात्रा सामान्य होती तो शायद ऐसा उतावलापन नहीं होता। बंद रास्तों ने उन्हें ज्यादा भयभीत किया है। घर–परिवार, परिजनों की चिंता अलग है। वैसे भी जब काम–रोजगार बंद है तो लोग घरों की ओर ही लौटेंगे।

कृषि–प्रधान देश होने के बावजूद कृषि आय अपर्याप्त होना चिंताजनक है। गांवों–कस्बों में रोजगार के अवसरों की कमी ने बड़ी आबादी को पलायन के लिए विवश किया है। कोरोना–संकट ने प्रवासी मजदूरों के लिए बेहतर अवसर प्रदान करने, मूल राज्य तथा वर्तमान राज्य दोनों जगह समुचित पंजीयन की व्यवस्था तथा सामाजिक सुरक्षा के ठोस उपाय करने पर विचार की जरूरत बताई है। कोरोना महामारी से निपटने के साथ ही देश को इन जटिल विषयों पर भी सोचना होगा। यह भी, कि ऐसे प्रवासी लोगों के बच्चों की शिक्षा और परिवार के सामाजिक जीवन में निरंतरता और सार्थकता कैसे सुनिश्चित की जाए।

दिल्ली में कोरोना संक्रमण के मामले 27 मई तक 15,257 हो गए। इस वक्त तक प्रति दस लाख की आबादी पर 9305 लोगों की टेस्टिंग हुई है। भारत में सर्वाधिक टेस्टिंग दिल्ली में ही हो रही है। इस वक्त तक यूपी में प्रति दस लाख मात्र 1069 और बिहार में मात्र 571 लोगों की टेस्टिंग हो पाई थी। यानी यूपी से लगभग नौ गुना जबकि बिहार से 16 गुना ज्यादा टेस्टिंग दिल्ली ने की। ऐसे आंकड़े जानना जरूरी है। जितनी ज्यादा टेस्टिंग होगी, उतने ज्यादा केस सामने आएंगे। कोरोना से लड़ने का यही सर्वोत्तम रास्ता है।

इस दिशा में की जा रही गंभीर कोशिशों का ही नतीजा है कि दिल्ली में रिकवरी रेट काफी अच्छा है, राष्ट्रीय औसत रिकवरी दर से काफी अधिक। यहां तक कि दिल्ली में कोरोना से मृत्यु दर भी कम है, हालांकि हर मौत दुखदायी है। राष्ट्रीय औसत मृत्यु दर लगभग 3.1 फीसदी है।

अष्टयोग-5067

3		4	6			7
	32		32	1	30	3
1		5		3		2
	35		35		32	
7		6		4		
	34	1	34	5	28	4
4	3	2			1	5

प्रस्तुत खेल सुडोकू व जोड़ की पद्धति का मिश्रण है. खड़ी व आड़ी पंक्तियों में 1से 7 तक के अंक लिखने अनिवार्य हैं. गहरे काले वर्ग में लिखी संख्या चारों और के 8 वर्गों की संख्या का कुल योग होगी. सीधी अथवा आड़ी पंक्तियों में 1 से 7 तक के अंक होना अनिवार्य है.

अष्टयोग 5066 का हल

3	1	4	6	2	5	7
5	32	7	32	1	30	3
1	6	5	4	3	7	2
2	26	3	37	7	37	6
4	3	2	7	6	1	5
6	34	1	34	5	28	4
7	5	6	3	4	2	1

Jagrutidaur.com, Bangalore

अपना ब्लॉग

गुजरात मॉडल बनाम दिल्ली मॉडल

मोहन। दिल्ली में यह 1.99 फीसदी है जबकि गुजरात में 6.17 फीसदी। इस फर्क से क्या गुजरात मॉडल बनाम दिल्ली मॉडल का अंतर दिखता है? गुजरात, जहां नकली वेंटिलेटर चर्चा में हैं। दिल्ली, जहां इस संकट में अस्पताल ही नहीं, स्कूल भी काम आ रहे हैं। दिल्ली में हमने कोरोना के खिलाफ शुरू से ही आक्रामक रवैया अपनाया। जिस वक्त कुछ लोग भारत में कोरोना का खतरा मामूली बता रहे थे, उस वक्त दिल्ली सारे शिक्षण संस्थानों को बंद करा चुकी थी। दिल्ली के रास्ते चलकर अन्य राज्यों ने भी शिक्षण संस्थान बंद किए। इसके कारण देश के अधिकांश शहरों से हॉस्टल खाली हो गए, स्टूडेंट्स घर लौट गए। यह नहीं होता तो लॉकडाउन के बाद प्रवासी मजदूरों की तरह लाखों स्टूडेंट्स की वापसी भी समस्या होती। लॉकडाउन का निर्णय भी सबसे पहले दिल्ली ने ही लिया।